विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४८, भाद्रपद पूर्णिमा, २८ सितंबर, २००४ वर्ष ३४ अंक ४

धम्मवाणी

अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति॥

– धम्मपद -३८

जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा दोलायमान (डांवाडोल) है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।

[धारण करे तो धर्म]

समता और श्रद्धा का बल

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की तीसवीं कड़ी)

जब साधक-साधिका तपोभूमि में यह विपश्यना विद्या सीखने के लिए आते हैं तो शील का कड़ाई से पालन करते हुए आनापान के सहारे माने आश्वास-प्रश्वास के सहारे चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करके प्रज्ञा के क्षेत्र में उतरते हैं। विपश्यना का काम शुरू करते हैं तो उनके लिए दो बातें जाननी बहुत जरूरी हैं। इन दो बातों के लिए सतर्क रहना बहुत जरूरी है। विपश्यना के दो पक्ष हैं। जैसे एक पक्षी की दो पांखें होती हैं, दोनों एक जैसी होनी चाहिए। छोटी-बड़ी नहीं। दोनों बलवान होनी चाहिए। एक दुर्बल और एक बलवान नहीं। अन्यथा पक्षी उड़ नहीं पायेगा। ऐसे ही किसी गाड़ी के दो चक्के होते हैं, दोनों एक जैसे होने चाहिए, एक समान होने चाहिए। एक चक्का छोटा है, एक बड़ा है तो गाड़ी आगे चल नहीं पाएगी। इसी प्रकार विपश्यना के दो हिस्से हैं। दोनों बराबर के मजबूत होने चाहिए। एक हिस्सा है – अपने भीतर जो कुछ हो रहा है, इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर जो-जो अनुभव हो रहा है, जो संवेदना हो रही है माने जो अनुभूतियां हो रही हैं – सुखद हैं, दुखद हैं; स्थूल हैं, सूक्ष्म हैं; कैसी भी हैं। पहली बात तो उनके प्रति सजग रहें, उनकी जानकारी तो हो। इतना भी मनोबल, इतनी भी मन की क्षमता नहीं बढ़ा पाया और उसे पता ही नहीं कि भीतर क्या हो रहा है? तो विपश्यना में सफल नहीं हुआ। इसलिए एक पक्ष तो यह कि जो कुछ हो रहा है, सब मालूम हो। दूसरा पक्ष यह कि मालूम होकर के समता में स्थित रहें। किसी भी अनुभूति को अच्छा मान करके उसके प्रति राग न जगाने लगें। किसी भी अनुभूति को बुरा मान करके उसके प्रति द्वेष न जगाने लगें। तो जागरूकता और समता, ये दोनों चक्के साथ-साथ, एक जैसे मजबूत होंगे तो गाड़ी आगे बढ़ती चली जायगी, बढ़ती ही चली जायगी।

कोई आदमी नदी के तट पर बैठा है और आंख से अंधा है। उसे दीखता ही नहीं कि नदी का बहाव कैसा है और कहता है, मैं बड़ी समता में हूं। नदी का बहाव मुझे जरा भी प्रभावित नहीं करता। अरे, तुझे पता ही नहीं कि नदी का बहाव कैसा है? कैसे प्रभावित करेगा तुझे? ठीक इसी प्रकार कोई व्यक्ति कहता है कि मैं तो बड़ी समता में रहता हूं। अरे, तो इन बाहर-बाहर की बातों को अपनी समझ में समता से देख रहा है। कोई प्रतिक्रिया होती भी है, दबा लेता है। राग जागता है, दबा लेता है, द्वेष जागता है, दबा लेता है। तो भीतर तक कैसे समता हुई रे? सामायिक तो भीतर होनी चाहिए ना। समता तो भीतर होनी चाहिए ना। अंतरमन की गहराइयों तक समता हो तो इसके लिए शरीर में क्या हो रहा है इसे जानना जरूरी है। इसे जानता जा रहा है, जानता जा रहा है, फिर भी समता में है। इसे जान रहा है, फिर भी समता में है, तो समझो विपश्यना ठीक हो रही है। शरीर में यहां मूर्च्छा है, वहां मूर्च्छा है। मूर्च्छा है माने कुछ नहीं महसूस हो रहा। कुछ अनुभव ही नहीं हो रहा तो भाई, वहां के प्रति तेरी समता कहां रे? तो अनुभव होना चाहिए, पहला काम सिर से पांव तक, पांव से सिर तक सर्वत्र अणु-अणु में अनुभूति होनी चाहिए, क्या हो रहा है? सुखद हो, दुखद हो, स्थूल हो, सूक्ष्म हो। कुछ न कुछ होते ही रहता है। उसके प्रति सजग, खूब सजग। क्या हो रहा है, उसे जान भी रहे हैं और फिर समता में भी हैं। यही विशुद्धि का मार्ग है। इसी को समझाते हुए भगवान ने कहा –

सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

– यह विशुद्धि का मार्ग है, विकारों से विमुक्त होने का मार्ग है। चित्त को नितांत निर्मल कर लेने का मार्ग है। क्या है? **सब्बे सङ्खारा अनिच्चा**, सारे संस्कार अनित्य हैं। संस्कार माने चित्त का वह हिस्सा जो प्रतिक्रिया करता है, जो कर्म-संस्कार बनाता है। वह संवेदनाओं के आधार पर ही बनाता है। जैसे ही कर्म-संस्कार बनाएगा, शरीर में कोई न कोई संवेदना होगी। उसके साथ ही बनाएगा और उस संस्कार का जो प्रतिफल आएगा, वह भी संवेदनाओं के आधार पर ही आएगा, संवेदनाओं के साथ आएगा। जो कर्म-बीज है वह भी संस्कार है और उसका फल आया वह भी संस्कार है। माने जो कुछ निर्माण हो रहा है, जो कुछ प्रकट हो रहा है, अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। **यदा पञ्ञाय पस्सति।** इस सच्चाई को केवल श्रद्धा के स्तर पर मान के रह जाय। अरे, भगवान बुद्ध की वाणी है, सही होगी। हम इसे स्वीकार करते हैं अथवा बुद्धि के स्तर पर, तर्क-वितर्क करके मान करके रह जाय। भगवान बुद्ध ने कहा है तो इस कारण कहा होगा। बाहर-बाहर की दुनिया में भी तो परिवर्तन हो रहा है ना, तो भीतर भी होता ही होगा। यूं मान रहा है तो बात नहीं बनी। 'प्रज्ञा', **यदा पञ्ञाय पस्सति** – प्रज्ञा

से देख रहा है माने विपश्यना कर रहा है। अनुभूति हो रही है। उस उत्पाद-व्यय, उदय-व्यय की अनुभूति हो रही है। अनुभूति हो रही है और प्रज्ञा है तो उसे समता के साथ देख रहा है। न उसके प्रति राग जगाता है, न उसके प्रति द्वेष जगाता है और न ऐसा मोह-विमूढ़ित रहता है कि कुछ हो रहा है और उसका पता ही नहीं है। अर्थात् ना राग है ना द्वेष है ना मोह है। यथाभूत सत्य को जान भी रहा है और न राग की प्रतिक्रिया करता है, न द्वेष की प्रतिक्रिया करता है। तब आगे बढ़ते-बढ़ते ऐसी अवस्था आती है कि **अथ निब्बिन्दति दुक्खे** – सारे दुःखों से छुटकारा हो जाता है, कोई दुःख रहता ही नहीं।

विपश्यना नहीं करता तो दुःख आने पर उसी में लोट-पलोट लगाता है। भोक्ताभाव से भोगता है। अरे, भोक्ताभाव से भोगता है तो विपश्यना कहां की? भोक्ताभाव समाप्त! अब केवल तटस्थ भाव है, तो इन सारे दुःखों के प्रति निर्वेदन है, निर्वेदन है। अरे, विशुद्धि का मार्ग मिल गया। बढ़ता ही जायगा, बढ़ता ही जायगा और बढ़ते-बढ़ते जैसे-जैसे चित्त निर्मल होता चला जायगा, वैसे-वैसे बहुत शांति, बहुत सुख, यह आध्यात्मिक सुख मिलने लगेगा। बाहर का लोकीय सुख नहीं, भीतर का आध्यात्मिक सुख, निर्मलता का सुख मिलने लगेगा। इसीलिए कहा गया –

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभति पीति पामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥

यतो यतो जहां-जहां, जब-जब **खन्धानं** इन पांचों स्कंधों में, माने शरीर-स्कंध में भी और चार चित्त-स्कंधों में भी, जहां-जहां देखे वहीं उदय-व्यय। उदय-व्यय की अवस्था जब आती है तो तरंगें ही तरंगें, बुदबुदे ही बुदबुदे। जो स्थूलता थी, दूर हो गयी। जो घनत्व था, दूर हो गया और समता के साथ यह अवस्था प्राप्त हुई और समता पुष्ट हुए जा रही है, पुष्ट हुए जा रही है। कोई नया कर्म-संस्कार बनाता नहीं, पुरानों की उदीर्णा होती है, निर्जरा हो जाती है। उदीर्णा होती है, निर्जरा हो जाती है। जैसे-जैसे यह अवस्था परिपक्व होती जाती है तो **लभति पीति पामोज्जं** – भीतर ही भीतर ऐसी प्रीति, ऐसा प्रमोद, आज की भाषा में कहें तो ऐसा आनंद, ऐसा आनंद, **अमतं तं विजानतं**, अमृत को जान लेता है। जिस अमृत को मुक्त हुए लोगों ने जाना, अनुभव करके जाना, उसको साधक भी जान लेता है, अनुभूतियों पर उतर जाता है। अरे, कल्याण हो जाता है। इसके लिए स्वयं काम करना पड़ता है। किसी की कृपा से नहीं हो जायगा। किसी ने सिर पर हाथ रख दिया कि बस अब तो मुक्त हुआ, मेरा आशीर्वाद है। नहीं होता भाई! धोखे में नहीं रहें।

किसी की कृपा होगी, बड़ी करुणा होगी और वह उस रास्ते पर चला होगा तो मार्ग आख्यात करेगा। **अक्खातारो तथागता** – तथागत होगा तो मार्ग को आख्यात करेगा। चलना तुम्हें ही पड़ेगा। **तुम्हेहि किच्चं आतप्पं**, तपना तुम्हें पड़ेगा, मेहनत तुम्हें करनी पड़ेगी। दूसरा कोई तुम्हारे लिए नहीं कर सकता। यह बात समझ में आ जाय और समझदारी के साथ काम में लग जाय तो आरंभ में बाधाएं तो आएंगी। जैसे हमने देखा कि अनेक दुश्मन हैं, वे हमारे सिर पर सवार होना शुरू हो जाएंगे। काम में रुकावट पैदा करेंगे, पर घबराना नहीं होगा। समझदार विपश्यी साधक है तो घबराएगा नहीं। बिल्कुल नहीं घबराएगा। दोस्त भी तो हैं हमारे। मित्र भी तो हैं हमारे। वे साथ देंगे। एक बड़ा मित्र है हमारा, हर साधक का मित्र है, वह है श्रद्धा। अरे, जिसके पास यह श्रद्धा का बल ही नहीं है, श्रद्धा का मित्र जिसके पास नहीं है, वह आगे कैसे बढ़ेगा? धर्म के प्रति श्रद्धा ही न हो तो धर्म के रास्ते एक कदम उठाना मुश्किल हो जायगा। शंका ही शंका, संदेह ही संदेह, कैसे काम करेगा? खूब श्रद्धा हो, खूब भक्ति हो। लेकिन होश के साथ हो। होश के साथ भक्ति जागे तो कल्याणकारिणी होती है और होश के साथ नहीं जागे, बेहोशी में जागे – अंधभक्ति हो जाती है तो खतरनाक हो जाती है। भक्ति के साथ-साथ विवेक होना चाहिए, समझदारी होनी चाहिए, ज्ञान होना चाहिए। हमारे जितने मित्र हैं इस रास्ते पर, उन सबके साथ-साथ ज्ञान होना चाहिए। समझदारी होनी चाहिए। नहीं तो अंधे हो जाएंगे। भक्ति जब अंधी हो जाती है, श्रद्धा जब अंधी हो जाती है तो खतरनाक हो जाती है। हमको धर्म के रास्ते से विमुख कर देती है। श्रद्धा किसी पर हो। किसी देवी पर हो, किसी देवता पर हो, किसी ईश्वर पर हो, किसी ब्रह्म पर हो, किसी अल्लाहताला पर हो, किसी महापुरुष पर हो, किसी बुद्ध पर हो, महावीर पर हो, ईसा मसीह पर हो, पैगम्बर पर हो – किसी पर हो। विवेक साथ रहेगा तो उसके गुणों को याद करेंगे और वैसे गुण मेरे जीवन में आयें, इसका प्रयत्न करेंगे। बस, श्रद्धा कल्याणकारिणी हो गयी। अंधश्रद्धा होगी, तो भिखमंगन श्रद्धा हो जायगी। बस, केवल मांगनी करेगा। हे देवी मुझे यह दे दे। हे देवता, मुझे यह दे दे। हे ईश्वर, मेरा यह कर दे। हे परमात्मा, मेरा यह कर दे। हे बुद्ध भगवान, मुझे तू तार दे। हे महावीरजी, मेरे लिए यह कर दे। बस, मांगना ही मांगना। भक्ति शुद्ध नहीं हुई। गुणों को याद करे और वैसे गुण अपने जीवन में धारण करे।

एक बुढ़िया माई एक शिविर में आयी। बड़ी खुश। दस दिन काम किया, बड़ी प्रसन्न होकर के गयी। अरे, बड़ी कल्याणकारिणी विद्या मिल गयी। इसी की मुझे खोज थी। चित्त कैसे निर्मल करें? चित्त तो निर्मल किसी प्रकार होता ही नहीं। मैल ही मैल जागता है। यह विद्या मिल गयी, मेरा कल्याण हो गया। अब घर जाकर भी सुबह-शाम, सुबह-शाम इसका अभ्यास करती गयी। जीवन में बहुत लाभ आया। बहुत परिवर्तन आये। साल भर के बाद वहीं दूसरा शिविर लगा तो फिर आयी। कहती है कि मेरा इतना कल्याण हुआ इस रास्ते पर कि जीवन ही बदल गया। इतनी सुख-शांति जीवन में आयी। इतने विकारों से मुक्ति मिली। इसको बलवान बनाने के लिए फिर आयी हूं। लेकिन कहते हुए संकोच होता है, मन में एक झिझक है। क्या झिझक है? बेटी, कहो क्या झिझक है? झिझक यही है कि यह तो ज्ञान का मार्ग है और मैं तो ऐसे परिवार में जन्मी, पली और रही कि वहां तो भक्ति ही भक्ति। मैं तो सदा भक्ति-मार्ग पर चलने वाली और अब जैसे-जैसे इस ज्ञान-मार्ग पर चलूंगी, मेरी तो सारी भक्ति छूट जायगी। इन देवी-देवताओं के प्रति मेरी जो श्रद्धा है, वह सारी नष्ट हो जायगी। "अरे, नहीं-नहीं, तू समझ तो सही। तेरी भक्ति और बलवान हो जायगी। तेरी श्रद्धा बलवान हो जायगी क्योंकि निर्मल हो जायगी, नष्ट नहीं होगी।" "नहीं, यह तो आपके कहने की बात है। ज्ञान का मार्ग है ना! भक्ति कैसे टिकेगी? श्रद्धा कैसे टिकेगी?" तो पूछ लिया मैंने, "अब तो श्रद्धा है क्या? तेरी देवी पर, देवता पर तुझे श्रद्धा है ना? क्या पूछते हैं! बहुत श्रद्धा है। तो बताओ, घर में कभी-कभी कोई बीमार हो जाय, तो तुम मनौती मनाती हो कि नहीं? हे देवीजी, हे देवताजी, इसको ठीक कर दे। मेरे पुत्र को ठीक कर दे, मेरे पति को ठीक कर दे, स्वस्थ कर दे तो मैं तुझे पांच रुपये का प्रसाद चढ़ाऊंगी। ऐसी मनौती मनाती हो कि नहीं? हां, मनाते हैं। यह तो बार-बार मनाते हैं। अरे, तो कहां श्रद्धा रे तुझे? अपने देवी-देवता पर श्रद्धा कहां? विश्वास कहां? पांच रुपये का भी विश्वास नहीं न! पहले इसको ठीक कर तो पांच रुपये का प्रसाद चढाऊंगी। पहले चढ़ाने वाली नहीं। अरे, तुझे पांच रुपये का विश्वास नहीं और कहती है मेरा विश्वास टूट जायगा। यह तो बनिये वाली श्रद्धा हुई न! बनिये वाला विश्वास हुआ न! पहले मेरा काम करके दे तो ले पांच रुपया देता हूं।

तुझे प्रसाद चढ़ाता हूं। अरे, कहां डूब गयी हमारी श्रद्धा? उसके गुणों को याद करें तो कल्याण हो जाय। गुणों को याद करें और जीवन में धारना शुरू करदें। जिसे ईश्वर कहते हैं, परमात्मा कहते हैं। जगत्पिता कहते हैं। जिसे देवी कहते हैं, जगज्जननी कहते हैं। मां-बाप कहते हैं उन्हें। अरे, तो मां-बाप कैसे खुश होंगे? जो संतान अपने मां-बाप के गुणों को अपने जीवन में नहीं धारण करती। वह जिस रास्ते चलने को कहते हैं, उस रास्ते नहीं चल करके विपरीत रास्ते पर चलती है तो मां-बाप कैसे खुश होंगे?

मैं अपने पुत्र से कहूं कि यह रास्ता तेरे लिए ठीक है। इस रास्ते चलेगा तो जीवन भर सुखी रहेगा, संपन्न रहेगा, समृद्धि रहेगी, शांति रहेगी। पर वह चले नहीं। चले बिल्कुल विपरीत रास्ते और सुबह-सुबह आकर के हाथ जोड़ के प्रशंसा करे –"बापूजी थारो कमल जिसो मुँह, थारी कमल जिसी आंख्यां, थारी....। मारूं चांटा उठा के, मूर्ख कहीं के, मुझे बेवकूफ बनाने आया है? मैं जो कहता हूं वह करेगा नहीं, और यह प्रशंसा के पुल बांधेगा। अरे तो जिसे जगत्पिता कहते हैं, जिसे जगज्जननी कहते हैं, उसे धोखा देना चाहते हैं कि बस तुम्हें प्रशंसा करके खुश कर लेंगे। जीवन में धर्म उतारेंगे नहीं। जो हुकुम रजाई है, तेरा हुकुम है, तेरी रजा है, ऐसा होना चाहिए। इस तरह का जीवन जीना चाहिए, वह जीएंगे नहीं और खुश कर लेंगे तुम्हें। अरे भाई, श्रद्धा के नाम पर कहां उलझ गये? श्रद्धा बड़ी कल्याणकारिणी होगी, जब विवेक के साथ होगी। ये गुण हैं। मेरे उपास्य के ये गुण हैं, मेरे जीवन में आ रहे हैं कि नहीं? मेरे जीवन में आ रहे हैं कि नहीं? जीवन में उतरने चाहिए। प्रयत्न तो करते रहें, जीवन में उतरे, जीवन में उतरे।

किसी को विष्णु के प्रति श्रद्धा हो गयी। अरे, बड़े कल्याण की बात हुई, विष्णु के प्रति श्रद्धा हो गयी। विष्णु का वर्णन पढ़ा होगा। कौन है विष्णु, कैसा है विष्णु? मध्य-युग में ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ, एक धारा चली साहित्य की। साहित्यकारों ने ऐसे साहित्य का निर्माण किया, जिसमें हर बात, अधिकांशतः संकेतों में समझायी गयीं। तो यह बात भी संकेतों में समझायी गयी विष्णु के बारे में कि वह क्षीरसागर में शयन कर रहे हैं माने इतना ऐश्वर्य है मानो दूध का समुद्र है – यह उसका निवास-स्थान है। इतना ऐश्वर्य है, वैभव है। और ऐश्वर्य, वैभव कितना अधिक है यह बताने के लिए साथ यह जोड़ा कि लक्ष्मी उसका पांव चांप रही है। अरे, लक्ष्मी जिसका पांव चांपे, उसके वैभव का, उसके ऐश्वर्य का क्या ठिकाना! इतना वैभव, इतना ऐश्वर्य किसी के पास आ जाता है तो नशा चढ़ता है, तो अकड़ आती है। गर्व और घमंड से भर उठता है और यहां देखो –**शांताकारं, शांताकारं** – चेहरे पर जरा-सी भी सिकुड़न नहीं, शांति ही शांति। घमंड नहीं, गर्व नहीं, **शांताकारं, शांताकारं** । फिर यह संकेतों की कहानी आगे बढ़ती है –**भुजग शयनं** , सांप की शय्या पर सोया है। अर्थात् सिर पर काल मँडरा रहे हैं, लेकिन जरा भी भय नहीं, चेहरे पर भय का नामोनिशान नहीं। **शांताकारं, भुजग शयनं** और क्या? नाभि में से कमल निकला है। अरे, प्रतीकों की भाषा है। क्या कमल निकला है? कमल पवित्रता का, निस्संगता का, निर्मलता का प्रतीक है। तो भीतर निर्मलता ही निर्मलता है। जिस पानी में जन्म लेता है कमल, उसकी एक बूंद उसको नहीं लग सकती, इतना निर्लिप्त रहता है। तो निर्लिप्त है। निस्संग है, निरासक्त है। और जो कमल निकला है उस पर ब्रह्माजी को बैठा दिया। चार मुँह वाले ब्रह्मा, क्या चार मुँह वाले ब्रह्मा? **अनंत मैत्री, अनंत करुणा, अनंत मुदिता, अनंत उपेक्षा –** ये चार ब्रह्मा के गुण होते हैं। इसीलिए इनको ब्रह्मविहार कहा जाता था। तो हमारे उपास्य में ये चार गुण हैं –अनंत मैत्री, अनंत करुणा, अनंत मुदिता, अनंत उपेक्षा माने अनंत समता। ये गुण हम में भी तो आयें। अपने को विष्णु का भक्त कहें, बहुत श्रद्धालु भक्त कहें और ये गुण अपने भीतर लाने का जरा भी प्रयत्न नहीं करें। अरे, श्रद्धा किस काम की? अंधी श्रद्धा हो गयी ना? विवेक साथ नहीं है। विवेक हमारी आंखें हैं और श्रद्धा हमारे चरण हैं।

जिस आदमी के पास आंख नहीं है, चरण है। चलेगा लेकिन रास्ते पर चलते-चलते कुरास्ते चला जायगा। मार्ग पर चलते-चलते कुमार्ग पर चला जायगा। किसी खड्डे में गिर जायगा। आंखें नहीं हैं ना। किसी के पास आंखें तो हैं, पांव नहीं है। देखता तो है। सारा रास्ता खूब समझता है, ऐसा है, ऐसा है, पर चल नहीं सकता। चरण नहीं है। श्रद्धा ही नहीं है। तो श्रद्धा भी हो, विवेक भी हो और जो अपना उपास्य है, कोई हो जिसका जो उपास्य है, अरे, कोई गुण तो होगा ही, तभी हमारा उपास्य हुआ। जिसमें कोई गुण ही नहीं, वह हमारा उपास्य कैसा? उसके प्रति क्या श्रद्धा करें? कोई गुण होगा। बस उन गुणों को याद करें और याद करके प्रेरणा जगाएं। ऐसे गुण मुझमें भी आएं, ऐसे सद्गुण मुझमें भी आएं। बड़ा कल्याण होना शुरू हो जायगा। वह सद्गुण आने शुरू हो गये तो जो देवी है, जो देवता है, जो ईश्वर है, जो ब्रह्म है, जो अल्लाताला है, जो भी है। जिसके प्रति हमारे मन में श्रद्धा है। अरे, कितना प्रसन्न होगा, कितना प्रसन्न होगा! विवेक साथ है और तब श्रद्धा है तो बड़ी कल्याणकारिणी श्रद्धा है। यह श्रद्धा साथ बनी रहे। यह मित्र साथ रहे। यह बल साथ रहे तो देखेगा धर्म के रास्ते, विपश्यना के रास्ते आगे बढ़ता ही जा रहा है, बढ़ता ही जा रहा है तो मंगल ही मंगल हो रहा है। कल्याण ही कल्याण हो रहा है। स्वस्ति ही स्वस्ति हो रही है। मुक्ति ही मुक्ति हो रही है।

विपश्यना विशोधन विन्यास की जयपुर शाखा

संक्षिप्त परिचय

विपश्यना विशोधन विन्यास, मुंबई के संचालक मंडल ने दिनांक ७-३-१९९२ को विन्यास की एक शाखा धम्मथळी, जयपुर पर स्थापित करने का निर्णय लिया। इस निर्णय के फलस्वरूप धम्मथळी पर एक सर्वसुविधासंपन्न शोधगृह का निर्माणकार्य आरंभ हुआ। उस अवसर पर पूज्य गुरुजी का मंगल संदेश निम्न प्रकार से प्राप्त हुआ –

धम्मथळी-स्थित शोध-गृह का शुभारंभ

"**धारेती'ति धम्मं** धारण करे तो ही धर्म है। बिना धारण किया हुआ धर्म हमारे लिए धोखा बन सकता है, प्रवंचना बन सकता है, कि न्हीं-कि न्हीं अवस्थाओं में बड़ा हानिकारक बन सकता है। धारण करे तो सभी अवस्थाओं में कल्याणकारी साबित होता है। जितना-जितना धारण करे, उतना-उतना कल्याणकारी, पर हानि तो नहीं ही करता है। धर्म धारण करने को ही प्रतिपादन कहते हैं – पालि में 'पटिपत्ति' कहते हैं। विपश्यना ही 'पटिपत्ति' है जो साधक को 'पटिवेधन' की ओर ले चलती है। विपश्यना का यही अभ्यास 'बींधती हुई प्रज्ञा' कहलाता है जो कि नित्य, शाश्वत, ध्रुव निर्वाण का साक्षात्कार करवाता है।

'परियत्ति' (याने पर्याप्ति) 'पटिपत्ति' और 'पटिवेधन' इन दोनों का सैद्धांतिक पक्ष है। प्रतिपादन के लिए मार्ग दर्शाता है। वास्तव में काम तो 'पटिपत्ति' और 'पटिवेधन' से ही होगा, परंतु प्रेरणा के लिए प्रतिपादनीय पथ पर प्रकाश-प्रक्षेपण कर मार्गदर्शन के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। विपश्यना विशोधन विन्यास इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए गठित किया गया है ताकि विपश्यना के शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर 'पटिपत्ति' का काम सरल हो जाय।

विपश्यना विशोधन विन्यास का मुख्यालय मुंबई में है, जयपुर में यह इसकी एक शाखा है। यह बड़ी महत्वपूर्ण शाखा बनेगी –इस आशा और विश्वास के साथ आज इसका धर्म-उद्घाटन हो रहा है। धम्मथळी की नयनाभिराम और नीरव, प्रशांत और प्रगल्भ प्रकृति विपश्यी शोधकर्ताओं को प्रभूत प्रेरणा प्रदान करेगी। निःस्वार्थी और लगनशील शोध-विपश्यी इस शाखा के आभूषण होंगे। धम्मथळी का यह शाखा केंद्र सारे भारत ही नहीं, सारे विश्व के दुखियारे लोगों को सार्वजनीन विपश्यना धर्म का संबल प्रदान कर दुःखमुक्त करे। सबका मंगल हो! सबका कल्याण हो! सबकी स्वस्ति-मुक्ति हो! सबकी स्वस्ति-मुक्ति हो!"

यह मंगल संदेश प्राप्त होने के साथ ही उपरोक्त शाखा ने सक्रिय रूप से कार्य करना आरंभ कर दिया। इस कार्य का संबंध किसी-न-किसी रूप में बुद्धवाणी से ही रहा है। अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ और अनेकों पर शोध जारी है।

पूज्य गुरुजी चाहते हैं कि साहित्य निर्माण के काम में और तेजी लायी जाय क्योंकि 'पटिपत्ति' के साथ-साथ 'परियत्ति' का काम भी बढ़ते रहना चाहिए। इस कार्य में बढ़ोत्तरी तभी हो सकती है जब साधकों-साधिकाओं का शिक्षित वर्ग इस कार्य में हाथ बटाने के लिए आगे आये और उन्हें इसके लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवाई जायं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु धम्मथळी से सटे हुए बाहर के भूखंड में छः नए कमरों का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। ये कमरे काफी आरामदेह हैं और इनमें से हरएक शौच-एवं-स्नान की सुविधा से युक्त है। इनमें लंबे समय तक बने रह कर गाइड के निर्देशानुसार साहित्य-संबंधी कार्य करते हुए साधक अपनी पुण्य-पारमी बढ़ा सकते हैं। यह भी देखने में आया है कि जो साधक 'परियत्ति' का काम करने में लगे रहते हैं उनकी साधना भी तेज होने लगती है क्योंकि यह कार्य करने से धर्म गहराई से समझ में आने लगता है।

अस्तु, साधकों से विनम्र निवेदन है कि वे अपनी योग्यता की परख स्वयं करते हुए यदि 'परियत्ति' के कार्य हेतु अपनी सेवाएं देना चाहें तो नीचे अंकित पते पर अपना आवेदन-पत्र भिजवा दें –

प्रभारी, शोधगृह, धम्मथळी, पोस्ट बाक्स नं. २०८, जी.पी.ओ., जयपुर-३०२००१

आवेदन-पत्र भिजवाते समय कृपया निम्न बातों को ध्यान में रखें –

१. वर्तमान में यह सुविधा केवल पुरुषों के लिए ही उपलब्ध है।

२. प्रथम बार कम-से-कम दो माह के लिए सेवा देना अनिवार्य है।

३. आवेदन-पत्र में इन बातों का उल्लेख अवश्य हो – शैक्षणिक योग्यता, विपश्यना शिविरों का ब्यौरा तथा साहित्य-संबंधी कार्य, यदि पूर्व में किया हो।

४. प्रतिदिन तीन बार निर्धारित समय पर साधना करना आवश्यक है। (इसके लिए एक नये ध्यानकक्ष का निर्माण भी हो चुका है।)

५. भोजन की निःशुल्क व्यवस्था केंद्र पर निर्धारित समयानुसार होगी।

"जी"-टीवी पर धारावाहिक 'ऊर्जा'

पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायणजी गोयन्का के साथ की गयी प्रश्नोत्तरी **"ऊर्जा"** नामक शीर्षक से "जी" टीवी पर अब **हर शुक्रवार दोपहर १२:३० बजे** प्रसारित हो रही है। इसमें पूज्य गुरुदेवजी 'धर्म' की बारीकियों को विस्तार से समझाते हैं। जिज्ञासु इसका लाभ उठा सकते हैं।

दोहे धर्म के

अंध भक्ति ना धर्म है, नहीं अंध विश्वास।
बिन विवेक श्रद्धा जगे, करे धर्म का नाश॥

अंधी होवे भक्ति जब, छूट जाय जब ज्ञान।
डूबे अंधा भक्त भी, डूब जाय भगवान॥

माने सार असार को, और सार निस्सार।
कहां मिले उस मूढ़ को, शुद्ध धरम का सार॥

मत कर वाद न तर्क कर, मत कर वाद विवाद।
धर्मवान करते नहीं, झगड़े और फसाद॥

भिन्न मतों की मान्यता, दर्शन के सिद्धांत।
धर्म छुटा उलझन बढ़ी, सभी हो गये भ्रांत॥

करे दार्शनिक कल्पना, करे वितर्क विचार।
यह सम्यक दर्शन नहीं, यह न साक्षात्कार॥

केमिटो इंस्ट्रूमेंट्स (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

मानव रो जीवन मिल्यो, धरम मिल्यो अणमोल।
अब स्रद्धा स्यूं, जतन स्यूं, मन की गांठ्यां खोल॥

ओ रै भोळा मानवी! मेट मनां रो मैल।
छोड़ द्रोह दुर्भावना, चाल धरम रै गैल॥

चाल चाल उत्साह स्यूं, मत ना होय उदास।
आज नहीं कल पूगसी, क्यूं तूं हुवै निरास?

या पगडंडी धरम री, पग पग बढणो सीख।
मन पर कड़ी लगाम रख, हो निसंक निरभीक॥

कठै गँवायो सांति सुख, कठै परम निरवाण?
कीं उळझण मँह जा फँस्यो? बारै आ अणजाण॥

बिसयां रै दळदळ धँस्यो, निकळ सीघ्र बलवान।
लेय सहारो धरम रो, धरम करै कल्याण॥

गोविन्द मिल्क एण्ड मिल्क प्रोडक्ट्स प्रा. लि.
पंढरपुर रोड, गणेश शेरी, कोळकी,
फल्टन, जि. सतारा (महाराष्ट्र)
फोनः ०२१६६-२२१३०२
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४८, भाद्रपद पूर्णिमा, ३० सितंबर, २००४**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) २४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: info@giri.dhamma.org